Knowledge Consortium of Gujarat
Department of Higher Education - Government of Gujarat
Journal of Humanity
ISSN: 2279-0233
Continuous issue-22 |January – March 2016

# राष्ट्रनिर्माण के परिप्रेक्ष्य में श्रीमद्भगवद्गीता की उपादेयता

गीता विश्वसाहित्य का सर्वाधिक प्रसिद्ध , पठनीय एवं चर्चनीय ग्रन्थ है । यहां तक कि लोग वेदों के विषय में जानते हों या नहीं लेकिन वे गीता के विषय में अवश्य सुपरिचित होते हैं । भारतीय परम्परा इसे समस्त उपनिषदों का सारतत्त्व मानते हुए इस ज्ञानरूपी गंगा में अवगाहन करने से जीवन का कल्याण हो जाता है ऐसा कहती है ।[i] विश्व की प्राय: समस्त भाषाओं में गीता का अनुवाद होना इसका महत्त्व और लोकप्रियता दोनों सिद्ध करती है । इसमें समग्र शास्त्रों का सार,[ii] आध्यात्मिक ज्ञान की पराकाष्ठा, भारतीय संस्कृति की उदात्त भावना, ज्ञान-कर्म-भक्ति का त्रिवेणी संगम इत्यादि अनेक विषयों का समाहार है । शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, संत ज्ञानेश्वर, महात्मा गांधी, बिनोबा भावे, स्वामी समर्पणानन्द आदि भारतीय विद्वानों ने और बुक्स, हम्बोल्ट, राल्फ वाल्डो आदि कतिपय विदेशी विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से श्रीमद्भगवद्गीता की प्रशंसा की है । इस तरह श्रीमद्भगवद्गीता का महत्त्व सुस्पष्टरूप से ज्ञात हो जाता है ।

मेरे विचार से गीता किंकर्तव्यविमूढ अर्जुन को युद्ध करने के लिए प्रेरित करने वाला यह कोई प्रासंगिक या धार्मिक ग्रन्थ नहीं है परन्तु संसार के मानसिक द्वन्द्वों में फंसे हुए किसी की मनुष्य को कर्तव्य-पथ पर अग्रेसर करने वाला सार्वकालिक, सार्वभौमिक, सार्वदेशिक ग्रन्थ है । इस लिए जिस विषय को आप गीता में ढूंढना चाहते हैं वह आपको गीता में प्राप्त हो जायेगा । वेदों के लिए कहा गया वाक्य " न ममार न जीर्यति" गीता के सन्दर्भ में भी सार्थक सिद्ध होता है ।

इस प्रकार राष्ट्रनिर्माण के परिप्रेक्ष्य में गीता की क्या उपादेयता है ? इस विषय पर गीता का स्वाध्याय किया और विशेषरूप से स्वामी समर्पणानन्दजी का अद्वितीय भाष्य पढने का सौभाग्य मिला जिससे इस सन्दर्भ में काफी तत्त्व मुझे प्राप्त हुए, जो इस स्वाध्याय पत्र के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहा हूं ।

गीता का प्रारम्भ 'धर्मक्षेत्रे' शब्द से होता है । जब तक कोई भी कार्य सत्य और धर्म के दृष्टिकोण से नहीं किया जाता तब तक वह निरर्थक है , महाभारत का युद्ध भी धर्म की संस्थापना के उद्देश्य से हुआ था न कि राज्यप्राप्ति के उद्देश्य से । इसीलिए विषादग्रस्त और किंकर्तव्यविमूढ

अर्जुन को वह अलग अलग तरीके से समझाकर युद्धार्थ प्रेरित करते हैं । स्वामी समर्पणानन्दजी इस ऐतिहासिक घटना को 'लोकोत्तरसंगम' नाम से सम्बोधित करते हैं ।[iii] किसी भी राष्ट्र को सही रूप से संचालित करने हेतु योग्य नेता की आवश्यकता होती है , जो स्व से उठकर परार्थ जीवन जीता हो , उसके लिए राष्ट्र से बढकर और कोई नहीं होता । महाभारत में जो नायक का कार्य श्री कृष्ण ने किया वह कार्य आज के राष्ट्रनायक को करना पडेगा । जो साम-दाम-दण्ड-भेद इन चार नीतियों का समुचित उपयोग करना जानता हो । जिस प्रकार अर्जुन को श्रीकृष्ण पर विश्वास था वह विश्वास राष्ट्र के लोगों को राष्ट्रनायक पर होना आवश्यक है । इस सन्दर्भ में गीता में कतिपय श्लोक प्राप्त होते हैं जिसमें अर्जुन कृष्ण को "शिष्यस्तेऽहं" कह कर गुरु मानते हैं, तो कभी खुद को दु:खी, भक्त और अज्ञानी बताकर उनसे उपदेश प्राप्त करते हैं ।[iv]

युद्ध से पहले अर्जुन की दृष्टि में क्षत्रिय धर्म का कर्तव्य स्वजन-रक्षा था इसीलिए वह प्रथम अध्याय में वह युद्ध के लिए तत्पर[v] कौरवों को देखकर कंपायमान हो जाता है[vi] और इनको मारकर कल्याण नहीं होगा ।[vii] फिर वह कह रहा है कि जिसके कारण यह राज्य,भोग और सुख प्रिय हैं[viii] वह आचार्य, पितर और पुत्र तो नहीं होंगे ।[ix] वह आगे कहता है कि कुलघातियों का स्वर्गप्राप्ति नहीं होती वे नरक में रहते हैं[x] इसलिए यह पापकर्म मैं नहीं कर पाऊंगा ।[xi] ऐसी परिस्थिति में अर्जुन को धर्म रक्षा या लोककल्याण की अपेक्षा स्वजनप्रेम महत्वपूर्ण लगता है । यही स्थिति हमारी भी है , हम सोचते हैं कि ज्यादा से ज्यादा क्या होगा हम मर जाएगें या उन दुष्टों की जीत होगी, परमात्मा न्याय करेगा इस प्रकार की निराशावादी बातों से अपने मन को बहलाते हैं या किनारा कर लेते हैं ।

श्रीकृष्ण द्वितीय अध्याय में सर्वप्रथम अर्जुन को यह कहते हैं कि किस प्रकार यह भाव तुम्हारे अन्दर प्रविष्ट हो गया[xii] और इस क्लैब्य और हृदय दुर्बलता के भाव को छोडकर युद्ध के लिए प्रवृत्त हो जाओ ।[xiii] और उसके अन्दर बार बार यह भाव जगाते हैं कि तुम्हारा कर्तव्य स्वजनरक्षा नहीं पर सुजनरक्षा है, प्रत्येक दुर्जन उसका शत्रु है वह भले उसका गुरु हो या उसका भाई । स्व से ऊठकर सु के मार्ग का अनुसरण गीता हमें सिखाती है । वहां जो बात धर्मशब्द से व्यवहृत है उसे हम राष्ट्रधर्म के सन्दर्भ में ले सकते हैं । मनुष्य के लिए अपने राष्ट्रधर्म से बढकर और कोई धर्म नहीं होता । इसकी रक्षा करते हुए यदि बलिदान भी देना पडे तो उसे निश्चय स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।[xiv] यदि राष्ट्र के लिए मनुष्य तैयार नहीं होता तो वह अपने धर्म और कीर्ति दोनों की हानि करता है और पापभाग बनता है ।[xv] "वीरभोग्या वसुन्धरा" यह धरती उसी को प्राप्त होती है जो वीर है । गीता के शब्दों में कहें तो सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय की परवाह करे बिना युद्ध करना ही क्षत्रिय का धर्म है ।[xvi] यदि जीत हुई तो राज्य और मृत्यु हुई तो स्वर्ग इस तरह राष्ट्रभक्त के दोनों हाथों में लड्डु है ।[xvii] इस तरह के देशभक्ति भाव राष्ट्रनायक

सभी मनुष्यों के अन्दर उत्पन्न करे । राष्ट्रनायक को जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने उद्घोष किया था उसी प्रकार का नाद करना पडेगा ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥[xviii]

सत्य के आचरण में और श्रेष्ठ हेतुओं की सिद्धि में तत्पर सज्जनों की रक्षा के लिए और दु:खकारी कार्यों में प्रवृत्त दुष्टों का विनाश हेतु राष्ट्रनायक को सदा कटिबद्ध रहना चाहिए ।[xix] उसे जो जिस प्रकार का व्यवहार करता है उसके साथ उसी प्रकार बरतना चाहिए ।[xx] इसी लिए श्रीकृष्ण संगठित साम्राज्य की स्थापना के लिए नायक के रूप में अपना दायित्व बखूबी निभा रहे हैं और फल की इच्छा के बगैर निष्काम कर्म करने का आदेश देते हैं ।[xxi]

राष्ट्रनिर्माण के लिए परस्पर सौहार्द, समरसता, एकता और अखण्डता की आवश्यकता होती है । गीता में इस सन्दर्भ में काफी कुछ प्राप्त होता है । देवताओं का दृष्टान्त देते हुए वहां कहा गया है कि यज्ञ अर्थात संगतिकरण से देवता प्रसन्न होते हैं और इस प्रकार नि:स्वार्थभाव से परस्पर कर्म करने से श्रेय की प्राप्ति होती है ।[xxii] स्वामी समर्पणानन्दजी ने यहां दो प्रकार के देवों की बात की है एक चेतन और दूसरे अचेतन । इन दोनों को प्रसन्न करने से ही हमारा कल्याण सम्भव है । लोककल्याण की भावना से संगठित होकर सत्कृत देवता मनोवांछित फल प्रदान करते हैं ।[xxiii] सभी को साथ लेकर चलने से ही राष्ट्र विकासपथ पर अग्रेसर होता है , स्वयं सुखों का उपभोग करने का अर्थ होता है पाप का उपभोग करना ।[xxiv] गीता में लोकसंग्रह शब्द से भी परस्पर सौहार्द की भावना विकसित होती है ।[xxv] विद्वान को चाहिए कि वह ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल को समदृष्टि से देखे । इससे अधिक क्या समरसता हो सकती है ।

सुराष्ट्रनिर्माण हेतु सुशिक्षित और साक्षर लोगों की जरूरत होती है । ज्ञान की महत्ता बतलाकर उसे विश्व की पवित्रतम तत्त्व कहा है –

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।[xxvi]

जिस प्रकार अग्नि काष्ठसमूह को भस्मसात् कर देता है उसी प्रकार ज्ञान सभी प्रकार के कर्मों का नाश कर देती है ।[xxvii] श्रद्धावान व्यक्ति ही ज्ञान का अधिकारी बनता है और अन्त में शान्ति भी इसीसे प्राप्त होती है ।[xxviii] सभी यज्ञों में ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है अन्ततोगत्वा कर्म की समाप्ति ज्ञान में ही होती है ।[xxix] ज्ञान की जितनी व्यापकता होगी उतना ही राष्ट्र का उत्थान होगा इसी कारण गीता में कर्म के पश्चात ज्ञान को महत्व दिया गया है।

राष्ट्रनिर्माण में धार्मिकसहिष्णुता भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है । गीता में स्वधर्म का पालन करते हुए मृत्यु होना श्रेष्ठ और परधर्म को कायक्लेश भय से स्वीकृत होने से भयावह माना गया है

।[xxx] इसी तरह राष्ट्रनिर्माण में लोकजागृति को भी महत्व दिया गया है। गीता में स्थितप्रज्ञ के लक्षण के सन्दर्भ में एक श्लोक है जिसमें तत्वदृष्टा को जागृत रहने को कहा गया है।[xxxi] इस सन्दर्भ में स्वामि समर्पणानन्दजी लिखते हैं कि संसार में दो प्रकार के मनुष्य हैं एक कर्तव्यपरायण और दूसरे क्षणिक सुख परायण। जब कर्तव्य की बारी आती है तो मनुष्य को नींद आ जाती है और जब सुख भोगने की बारी आती है तब नाम सुनते ही उसकी नींद उड जाती है वह जागृत हो जाता है। जब तक कर्तव्य के विषय में जागृति नहीं होगी तब तक राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता।

सामाजिक कुप्रथाओं का, समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार, आतंकवाद आदि का निर्मूलन भी राष्ट्र के लिए जरूरी होता है इस सन्दर्भ में गीता के अठाहरवें अध्याय में सभी वर्णों के धर्म और कर्तव्यों का विशद वर्णन किया है।[xxxii] यहां पर ध्यातव्य है कि गुण-कर्म और स्वभाव के अनुसार वर्णव्यवस्था का गीता में विधान लक्षित है न कि जन्मना। उसी के साथ मानव अपने कर्तव्यों को समझे और पूर्ण निष्ठा के साथ उसका अनुसरण करे तो निश्चय ही परम सिद्धि को प्राप्त कर सकता है।[xxxiii] इस श्लोक को स्वामीजी गीता का सार मानते हैं।

यत: प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव: ॥

और तो और यह महाभारत का युद्ध तो इसी सामाजिक कुप्रथाओं के कारण से हुआ था यदि समाज में द्युत जैसी क्रीडा का प्रचलन न होता तो यह युद्ध न होता । श्रीकृष्ण स्वयं द्युत के घोर विरोधी थे। वे वनपर्व के तेरहवें अध्याय में लिखते हैं कि मैं यदि उस समय युद्ध के लिए गया था अन्यथा बुना बुलाए भी वहां जाकर यह होने नहीं देता – "निगृणीयम् बलेन तम् "। इसी लिए वह शिशुपाल,कंस,जरासंध, दुर्योधन जैसे समाजविरोधी तत्वों का संहार करने और करवाने में जरा भी संकोच नहीं करते।

राष्ट्र निर्माण के घटक तत्वों में नैतिकमूल्यों एवं आदर्श सिद्धान्तों की विशेष भूमिका होती है। क्योंकि इस नींवरूपी पत्थर पर राष्ट्ररूपी भव्य प्रासाद का निर्माण होता है। जिस प्रकार श्रेष्ठ पुरुष आचरण करते हैं उसी का आचरण करने को गीता निर्देश देती है।[xxxiv] सभी लोगों को आत्मवत् देखना[xxxv], नरक के तीन द्वारों का परित्याग[xxxvi], इन्द्रियों का निग्रहण[xxxvii], प्रसन्नता से सभी दु:खों की निवृत्ति[xxxviii],सभी कार्यों का निष्काम भाव से ईश्वर के साक्षित्व में सम्पादन[xxxix] इत्यादि अनेक आदर्शों का अनुपम भण्डार हमें गीता में सहज रूप से यत्र तत्र सर्वत्र प्राप्त होता है। अन्त में गीता का समापन जिस प्रकार किया गया है वह निश्चितरूप से ध्यातव्य है - जिस राष्ट्र का नायक श्रीकृष्ण जैसा होगा और अर्जुन जैसा धनुर्धारी उसका अनुयायी हो वहां श्री,विजय,भूति और शाश्वत नीति का साम्राज्य अवश्य स्थापित हो जायेगा।[xl]

आज के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के युग में जब संपूर्ण विश्व प्रगति के नये आयाम दिन-प्रतिदिन प्राप्त कर रहा है तब उसके साथ विश्व में यत्र तत्र सर्वत्र वैचारिकरूप से अत्यन्त ह्रास दिखाई दे रहा है। जिसके फलस्वरूप मानव जीवन संकटापन्न होता जा रहा है। इस प्रकार की परिस्थिति में राष्ट्र विकास के लिए अवरोधरूप परिबल जैसे कि आतंकवाद, भ्रष्टाचार, पर्यावरण प्रदूषण, जातिवाद, प्रान्तवाद, असहिष्णुता, पारस्परिक वैमनस्य, साम्प्रदायिकता आदि गंभीर समस्याओं का निर्माण हुआ है। वर्तमान में राष्ट्र का विघटन करनेवाली तथा राष्ट्रविकास में बाधक जितनी भी समस्यायें हैं उन समस्याओं का समाधान इन उपर्युक्त सन्दर्भों को ध्यान में रखकर किया जाए तो निश्चित रूप से हमारा राष्ट्र पुनर्वैभव और महनीय गौरव को प्राप्त हो जाएगा। गीता में प्रतिपादित शाश्वत आदर्शों के अनुसरण करने की तथा व्यवहार में चरितार्थ करने की नितान्त आवश्यकता है। निज-हित, परिवार-हित और समाज-हित से बढकर राष्ट्र-हित होता है तथा राष्ट्रधर्म से श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं है यह तथ्य गीता के अनुशीलन से हम समझ सकते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर राष्ट्रनिर्माण के परिप्रेक्ष्य में गीता की महती उपयोगिता सिद्ध होती है।

---

**संदर्भ :**


[i] - सर्वोपनिषदो गाव: दोग्धा गोपालनन्दन: ।
पार्थो वत्स: सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीताऽमृतं महत् ॥ महाभारत ६.४३.१

[ii] - सर्वशास्त्रमयी गीता ॥ तदेव- ६.४३.२

[iii]. गीता-१.२ पर सामर्पण भाष्य

[iv]. द्रष्टव्य - गीता- २-७

[v]. गीता- १-२८

[vi]. गीता- १-२९

[vii]. गीता- १-३१

[viii]. गीता- १-३३

[ix]. गीता- १-३४

[x]. गीता- १-४४

[xi]. गीता- १-४५

[xii]. गीता- २-२

[xiii]. गीता- २-३

[xiv]. गीता- २-३१, २-३७

[xv]. गीता- २-३३

[xvi] / गीता- २-३८

[xvii] . गीता- २-३७

[xviii] . गीता- ४-७,८

[xix] . गीता- ४-७,८ पर सामर्पण भाष्य

[xx] . गीता- ४-११

[xxi] . गीता- २-४७

[xxii] . गीता- ३.११

[xxiii] . गीता- ३-१२

[xxiv] . गीता- ३-१३

[xxv] . गीता- ३-२०

[xxvi] . गीता- ४-३८

[xxvii] . गीता- ४-३७

[xxviii] . गीता- ४-३९

[xxix] . गीता- ४-३३

[xxx] . गीता- ३-३५

[xxxi] . गीता- २-६९

[xxxii] . गीता- १८वां अध्याय

[xxxiii] . द्रष्टव्य गीता का १८ वां अध्याय

[xxxiv] . गीता-३-२१

[xxxv] . गीता-६-२९

[xxxvi] . गीता-१६-२१

[xxxvii] . गीता-२-६२,६३

[xxxviii] . गीता-२-६५

[xxxix] . गीता-५-१०

[xl] . गीता-१८-७८

**********

**डॉ. भावप्रकाश एम. गांधी**
**असि.प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष- संस्कृतविभाग,**
**गवर्मेन्ट आर्ट्स कोलेज- भेसाण,**
**जुनागढ , गुजरात**

Copyright © 2012- 2016 KCG. All Rights Reserved. | Powered By : Knowledge Consortium of Gujarat